Online at: https://researchtrendsjournal.com **ISSN No:** 2584-282X

INTERNATIONAL JOURNAL OF TRENDS IN EMERGING RESEARCH AND DEVELOPMENT

Volume 2; Issue 3; 2024; Page No. 199-202

Received: 01-02-2024
Accepted: 03-04-2024

विद्यापति के भक्ति काव्य में सामाजिक चेतना का अध्ययन

[1]Suman Kumar and [2]Dr. Poonam Devi

[1]Research Scholar, Department of Hindi, Maharaja Agrasen Himalayan Garhwal University, Uttarakhand, India
[2]Professor, Department of Hindi, Maharaja Agrasen Himalayan Garhwal University, Uttarakhand, India

Corresponding Author: Suman Kumar

सारांश
विद्यापति जो कुछ कहते हैं, हृदय से कहते हैं। उसमें प्राणों की प्राणावत्त तथा उत्कट जिविषा की निहित होती है। तटस्थ रहकर कुछ कहना जानते ही नहीं हैं। अतएव, उनका समस्त भाव – संसार प्रकृत प्रीति का विषय बन जाता है। चूंकि प्रेम का मूल प्रेरक सौन्दर्य है, उसका आश्रय है यौवन, तो वह प्रेम आनन्द की स्वर्गिक सुरभि का सम्प्रसारण क्योंय न करे ? निष्कर्षतः, विद्यापति आनन्द और भोग के अनन्य कवि हैं। मैथिल कोकिल विद्यापति कवि थे, महाकवि थे, आशु कवि थे और सबके ऊपर सौन्दर्य के अप्रतिम एवं असाधारण स्रष्टा थे। उन्होंने सौन्दर्याभिव्यक्ति के लिए काव्य – रचना की है। कवि ने अत्यन्त समीप से सौन्दर्य को देख और परखा था। उन्हें सौन्दर्य की प्रत्येक गति व चाल का पूर्ण ज्ञान था। उनके काव्य में इन रूपों का – चाहे वह रूप सौन्दर्य हो, चाहे भाव सौन्दर्य, चाहे प्रकृति की बिखरी सुषमा हो और चाहे शिल्पगत अभिनवता हो – सहज उच्छलन हुआ है। विद्यापति के व्यक्तित्व एवं कृतित्व में उनके आचार्यत्व और कवित्व का समान रूप से सुष्ठु एवं आवर्जक समागम हुआ है।

मुख्य शब्दः प्राणों, प्राणावत्त, सौन्दर्याभिव्यक्ति, प्रकृति, आचार्यत्व

प्रस्तावना

काल निर्णयः अनवर्त छंदावर्तन के उपरान्त भी कवि विद्यापति की जीवन तिथि काकोई सटीक प्रामाणिक आधार नहीं मिल सका है। कवि की जीवनी में बहुत कुछ ऐतिहासिक आधार पर सामग्रियाँ प्राप्त हुई है, क्योंकि इनका पूर्व से ही राज्याश्रित था। इतिहास के साथ इनके इतिहास भी जुड़ा रहा। कई प्राचीन ग्रन्थों के प्रसंग क्रम में कवि की चर्चा की गयी है। एक ताम्रपत्र तथा कवि स्वहस्त लिखित वृहत पोथी ''श्रीमद्–भागवत'' आद्योपान्त प्राप्त हुई है।

कवि के पिता ''गणपति ठाकुर'' ओइनवार वंश के राजा ''गणेश्वर'' के दरबार में सभासद थे। ऐसा मंतव्य है, कि कवि अपने पिता के साथ राज सभा में जाया करते थे। उस समय विद्यापति की आयु मात्र आठ–दस वर्ष से कम रही होगी।

बाबू ब्रजनन्दन सहाय ने अपनी पुस्तक ''मैथिल कोकिल विद्यापति'' में कहा है, कि विद्यापति अपने पिता के साथ दरबार जाया करते थे। कवि विद्यापति की स्वयं रचित ''कीर्तिलता'' के अनुसार राजा गणेश्वर की हत्या असलान द्वारा '252' लक्ष्मण संवत में हुईं इस समय कवि की आयु 11–12 वर्ष की रही होगी। यदि कीर्तिलता के तथ्य को आधार माने तो विद्यापति का जन्म लक्ष्मण सम्वत ''242'' के आस पास हुआ है। राजा गणेश्वर को तुर्क मूल असलान नामक व्यक्ति ने राज्य के लोभ में आकर विश्वासघात से मार डाला था। राजा के तेजस्वी पुत्रों ने युवा होते ही राज्य की अवस्था देख जौनपुर जाकर वहाँ के कॉासक ''इब्राहिमॉाह'' की सहायता से असलान को युद्ध में परास्त किया। युद्ध में राजा गणे वर के ज्येष्ठ पुत्र ''वीरसिंह'' की मृत्यु हो गयी और ''कीर्तिसिंह'' राजा घोषित हुए। इन्ही कीर्तिसिंह की प्रेरणा से कवि ने ''कीर्तिलता'' की रचना की। इस ग्रन्थ में कवि ने स्वयं को ''खेलन कवि'' कहा, अवय ही कवि ''कीर्तिसिंह'' और ''वीर सिंह'' की अपेक्षा अल्प वयस रहे होंगे।

इस तथ्य से स्पष्ट है कि विद्यापति लक्ष्मण संवत ''252'' सन् 1371 ई0 में यदि दस वर्ष के थे। इससे निश्चत रूप से कहा जा सकता है, कि इस आयु में कोई संस्कृत का मूर्धन्य विद्वान नहीं बन सकता, सम्भवतः इस कारण ''कीर्तिलता'' की भाषा अवहट्ट है। श्री नगेन्द्र नाथ गुप्त जी ने अपने ग्रन्थ ''विद्यापति पदावली'' (बंगला संस्करण) में कहा है, कि ''243'' को यदि राजा ''शिवसिंह'' का जन्म काल मान लेते हैं, तो कवि विद्यापति का जन्म लक्ष्मण संवत ''241'' के आसपास होगा, क्योंकि शिवसिंह ''50''वर्ष की अवस्था में गद्दी पर आसीन हुए विद्यापति इनसे दो साल बड़े थे। इसी आधार पर विद्यापति का जन्म संवत ''241'' लक्ष्माणब्द अर्थात् सन्''1360'' ई0 में हुआ, ऐसा मान लिया गया। जन्म काल के निर्धारण के विषय में किसी वाह्य साक्ष्य के अभाव में अन्तःसाक्ष्य को आलोकित करना चाहिए। कीर्तिलता ग्रन्थ से स्पष्ट होता है, कि यह ग्रन्थ कवि की प्रारम्भिक रचनाओं में से

एक है। ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर विद्वान इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि ''कीर्तिलता'' का रचना काल सन् 1404 ई0 के लगभग है। इस तथ्यानुसार कवि कीअवस्था लगभग 42 वर्ष की रही होगी। आधुनिकता की व्याख्या, परिभाषा और संकल्पना कहीं से धर्मांधता और स्खलित सामाजिक जीवन की कामना पर आधारित नहीं थी, जहां धर्म, मानवीयता के आड़े आकर मनुष्य को रैशनल होने से बाधित कर दे। आधुनिक होने का व्यापक अर्थ मानव मुक्ति में देखा गया था, वही मुक्ति और मानव के मान की संकल्पना 15वीं सदी में मैथिल दार्शनिक विद्यापति स्थापित करते हैं और 18वीं सदी में पश्चिमी दार्शनिक हीगेल करते हैं. विद्यापति को महज कवि कोकिल बना उनके दार्शनिक, सामाजिक संदर्भ को अनदेखा किया गया है। विडंबना है, कि हिंदी साहित्य संसार ने मैथिली पदावलियों के जरिये उन्हें अपना क्लेम तो कर लिया, पर फारसी के विद्वान खुसरो के साथ उन्हें महज 'फुटकल रचना' करनेवाले की संज्ञा भर दी।

आज जब हम धर्म और सामाजिक सरोकारों के द्वंद्व से जूझ रहे हैं, तब क्या हमारे पूर्ववर्ती समाज से कुछ लिखित या मौखिक परंपरा की विरासत है, जिसका फलक सर्वकालिक हो? शाश्वत हो? ऐसे में विद्यापति की पदावलियाँ, जो कि संस्श्त में न होकर देसिल बयना मैथिली में लिखी गयीं, का आशय हमें समझना होगा, कि क्यों एक संस्श्त विद्वान ने अभिजातीय भाषा संस्श्त को छोड़ एक देसी, लोकभाषा को अपनी पदावलियों का माध्यम बनाया? इन पदावलियों का उद्देश्य जनसामान्य के बीच आनंद अनुभूति के संचार का था, आम जन के कामानुभूति को वृहद, विषद रूप देकर पुरुषार्थ के परम लक्ष्य निर्वाण या मानव मुक्ति का था. यह उनका सामाजिक सरोकार ही था, जो कामानुभूति को अभिजात्य का अनुभव मात्र नहीं मानकर एक गाइडबुक रच रहा था, जो जनसामान्य की भाषा में, उनके एक अंतरंग संसार का निर्माण कर रही थी। उनके सामाजिक अस्तित्व की भूमि तैयार कर रही थी, मातृभाषा को गरिमा प्रदान कर रही थी। उनकी पदावलियों के नायक और नायिका गैर–वैदिक परंपरा से निकले राधा–कृष्ण हैं, अभी तक के आदर्श परंपरा से भिन्न स्खलित स्त्री, ग्वालिन राधा और जन नायक कृष्ण जिन्हें हम मिथिला के शैव, वैष्णव और शाक्त परंपरा में पहले और बाद में भी कभी इतनी सामाजिक स्वीकृत्ति देते नहीं सामने आते हैं, वही आम जन से व्यापक और अभिन्न कनेक्ट स्थापित करते गोप–ग्वालिन नायक व नायिका राजकवि विद्यापति के वृहद सामाजिक सरोकार की ही उपज माने जा सकते हैं. समाज के आम जन को संक्रमण काल में उनकी लोकभाषा, मातृभाषा, नायक–बिंब के जरिये एक संबल प्रदान कर रही थी, ऐसा सामाजिक–भाषाई संदर्भ हमें सामुदायिक सिद्धांत व्याख्या में बिरले ही मिलता है, तभी तो चैतन्य उनके पदों में परमानंद की अवस्था को प्राप्त करते थे, टैगोर उनसे प्रेरित हो छद्म नाम से ब्रजबुली में भानुसिंह रचनावली रच रहे थे. हालांकि, कुछ विद्वान इसे संक्रमण और संस्श्त के अवसान का काल नहीं मानते, क्योंकि मिथिला में अनेकों साहित्यिक और दर्शन (नबन्याय) संबंधी नये ग्रंथ लिखे जा रहे थे. विद्यापति की ही एक अन्य रचना, पुरुष–परीक्षा, जो जेंडर विषयकसंबंधी भारतीय परंपरा में लिखी गयी पहली और आखिरी पुस्तक मानी जा सकती है।

अध्ययन के उद्देश्य

1. महाकवि विद्यापति सांस्कृतिक चेतना व समरसता के प्रतीक का अध्ययन
2. विद्यापति के भक्ति काव्य में सामाजिक चेतना का अध्ययन

चर्चा

काव्य–भाषा का तात्पर्य काव्य के भाव चित्रों को आधार प्रदान करने वाली वह शक्ति जिसके माध्यम से भाषा की कोटि को श्रेणीबद्ध किया जाता है, अर्थात् जिससे गद्य, बोलचाल की भाषा और काव्य की भाषा में अन्तर को समझा जाता है।

काव्य–भाषा, जन–भाषा, या अन्य इतर विधाओं की भाषा से प्रयोगात्मक स्तर पर उच्च कोटि की होती है। काव्य के प्रत्यक्ष व परोक्ष सारे अवयव छन्द, लय, ध्वनि, अलंकार, प्रतीक, बिम्ब, मिथक आदि भाषा की ॉक्ति तथा सौन्दर्य आचरण हैं।

भारतीय साहित्य चिन्तन का अलंकार विधान प्रस्तुत और अप्रस्तुत को प्रायः साथ–साथ लेकर चलने के कारण रचना शिल्प का अंग तो है, पर काव्य–भाषा के विकास में पर्यवसित नहीं हो पाता। प्रतीक और बिम्ब अप्रस्तुत होते हुए भी भाषिक प्रक्रिया में प्रस्तुति में स्थानापन्न हो जाता है। अतः भाषा के अत्यन्त संवदेन'ील स्तर पर रुपान्तरित हो जाते है, जबकि अलंकार अपनी स्थिति में अतिरिक्त सजावट के रूप में देखे जा सकते है। भाषा की रचना प्रक्रिया का अभिन्न अंग नहीं बन पाते। अर्थात् काव्य–भाषा में बिम्ब, प्रतीक शब्द अथवा मिथक सजावट कार्य नहीं करते। वरन् भाषा को अर्थवत्ता प्रदानकरते हैं, प्रतीक शब्द मात्र है और इस प्रतीकात्मक ॉब्द की वास्तविक रचनात्मक परिणति तब होती है, जब वोभाव चित्रों अथवा बिम्बों के रूप में उभर कर काव्य पंक्तियों में परिणत होने लगते है। यह भावों की भाषा की काव्य–भाषा का महत्वपूर्ण अंग है।

विद्यापति के रचनाकाल में काव्य–भाषा के रूप में किसी एक भाषा का एकाधिकार नहीं था। काव्य रचना के लिए कई भाषाएँ एक साथ प्रचलित थी। कवि अपनी रूचि के अनुसार किसी भी भाषा को ग्रहण कर काव्य रचना करते थे। विद्यापति ने संस्कृत, अपभ्रं'ा, मैथिली तीनों भाषाओं में काव्य की रचना की। विद्यापति के युग को भाषा के क्षेत्र में सन्धिकाल कहा जाता है। उनके काव्य में भाषा प्रयोग विधि की श्रेष्ठता को देखकर ही उनको कविराज उपमा से प्रतिष्ठित किया गयज्ञं

देसिल बयना" को "सब जन मिट्ठा

कवि अपने आश्रयदाताओं और सुसंस्कृत नागरिकों के साथ–साथ रसिक एवं सहृदय श्रोताओं और पाठकों को भी नही भूले। संस्कृत भाषा में श्रृंगार गीत की रचनाएँ भी खूब हुई। प्रकृति की पृष्ठभूमि पर मानवीय भावों का सुन्दर चित्रण हुआ। कवि विद्यापति ने तत्कालीन ही नहीं, बल्कि प्राचीनकाल के संस्कृत साहित्य का भी अध्ययन अच्छी तरह से किया था। इसीलिए उनकी रचनाओं पर, संस्कृत साहित्य की छाप स्पष्ट है। उनका "शैवैसर्वस्वसार प्रमाणभूत संग्रह" उनके प्राचीन ग्रन्थों के अध्ययन का ही प्रमाण है, शिवपूजा से सम्बन्धित सभी शॅलोक प्राचीन ग्रन्थों से ही सग्रहित है। 'भू–परिक्रमा' उनके भौगोलिक ज्ञान का परिचायक है। वहाँ दानवाक्यावली, लिखनावली, विभागसार, दुर्गाभक्तितरंगिणी, स्मृतिकार, नीतितत्वविशारद तथा उनके भक्त कवि होने का परिचायक है। इस प्रकार वैदिककाल से लेकर आज तक काव्य–भाषा के रुप में संस्कृत अक्षुण धारा के रू' में प्रवाहित हो रही है। भारतीयों के समस्त धर्मग्रन्थ, पुराण, रामायण, महाभारत, स्मृतिग्रन्थ, दर्शन, महाकाव्य, नाटक, काव्य, गद्यकाव्य, गीतिकाव्य, आख्यान, साहित्य आदि संस्कृत में ही हैं।

इतना ही नहीं व्याकरण, काव्याास्त्र, गणित, ज्योतिष, छनदशास्त्र, कामशास्त्र, आयुर्वेद, धनुर्वेद, वास्तुकला, अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, छन्दशास्त्र, को ग्रन्थ तक संस्कृत में है। विज्ञान का ऐसा कोई अंग नहीं है, जो संस्कृत में उपलब्ध न हो। अर्थात् ज्ञान का इतना सारा अखण्ड भण्डार किसी एक भाषा में छुपा हो, तो कोई भी सहृदय विद्वान कवि उसे प्रभावित होगा। परन्तु क्या चौदहवी शताब्दी में भी संस्कृत बोलचाल की भाषा थी? इस विषय में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है, कि संस्कृत विद्वतजनों की

भाषा थी या जनसाधारण की, अधिकाशं विद्वान इस पक्ष में है, कि संस्कृत तत्कालीन जनसाधारण की भाषा थी, और उच्च कोटि का साहित्य संस्कृत में ही लिखा जाता था। किन्तु विद्वानों का यह मत अन्तिम सत्य नहीं कहा जा सकता है। यदि संस्कृत 14वीं शताब्दी में बोलचाल की भाषा थी, तो विद्यापति के द्वारा "देसिल बयना" को "सब जन मिट्ठ्ठा" कहकर प्रेरित करने की आश्यकता नहीं पड़ती, क्योंकि प्रकाण्ड संस्कृत पण्डित भी दैनिक व्यवहार में बोलचाल की भाषा का प्रयोग करते थे। सामान्य जन भी संस्कृत बोलने और समझने की क्षमता रखती थी। इसे वर्तमान समय में खड़ी बोली के उदाहरण से समझा जा सकता है,शुद्ध साहित्यिक खड़ी बोली का उपयोग बहुत कम प्रदेशों में होता है। अधिकां"ा जनता अवधी, ब्रजभाषा, भोजपुरी, मैथिली (अब भाषा) आदि बोलियों का प्रयोग दैनिक व्यवहार में करती है, परन्तु यह सभी साहित्यिक हिन्दी बोलने और समझने की क्षमता रखते है तथा लेखन आदि के साहित्यिक खड़ी बोली का प्रयोग करते है। इसी प्रकार विद्यापति के समय में भी जन सामान्य में संस्कृत बोलने और समझने की क्षमता तो थी, किन्तु दैनिक प्रयोग में बोल चाल की भाषा मैथिली काही प्रयोग किया जाता था। साथ ही शिक्षा ग्रहण सामन्तकाल में सभी मानस द्वारा सम्भव नहीं था। सुसंस्कृत एवं उद्भट कवि होते हुए भी ऐसी परिस्थिति के उपरान्त मिथिला में विद्यापति बहुत दिनों तक अज्ञात ही रहे। इसका मूल कारण उनका संस्कृत प्रेम था, क्योंकि गत् ॉताब्दियों तक मिथिला भी संस्कृत का केन्द्र रही, जिस कारण वहाँ भी भाषा के कवि की उपेक्षा रही और मैथिल विद्वान भी मैथिली में कविता करने से कतराते रहे। उनमें धारणा थी, कि कविता की भाषा संस्कृत और प्राकृत है। जिस कारण विद्यापति की पदावली पर पूर्ववर्ती संस्कृत कवियों की काव्यभाषा का प्रभाव पर्याप्त रूप से प्राप्त होता है।कवियों में विशेष रूप से कवि माध, कालिदास, अमरूक, गोवर्धनाचार्य, जगन्नाथ, और जयदेव से प्रभावित रहे, परन्तु विद्यापति जी ने अपनी काव्य प्रतिभा में जो नवीनता जोड़ दी जिससे यह कहीं–कहीं इन कवियों से भी आगे निकल गये। कालिदास से लेकर जयदेव तक के संस्कृत साहित्य में जनसमृद्धि और विलासी जीवन का चित्र मिलता है। जो कालिदास के काव्यों से उत्तरोत्तर अधिक विलासी दिखाई पड़ता है। विद्यापति के काव्य पर इन्हीं विलासी प्रणय चित्रों का प्रभाव देखने को मिलता है।

इन कवियों के साथ विद्यापति का तुलनात्मक अध्ययन करने से यह स्पष्ट हो जाता है। कालिदास मेघदूत जैसे निरहकाव्य और श्रृंगारतिलक जैसे श्रृंगारिक काव्य के श्रेष्ठ रचयिता माने जाते है। विद्यापति ने न केवल कालिदास द्वारा रचित ग्रंथों का अध्ययन किया बल्कि इनके भावों का ग्रहण कर और सरस बना दिया। श्रृंगारतिलक के ॉलोक के साथ विद्यापति के पदों की तुलना करने पर विद्यापति के पदों की सरसता आँकी जा सकती है।

"यामिन्येषा बहुलजलदैर्बद्ध भीमान्धकारा।
निद्रां यातो मन पतिरसौ क्लेातिः कर्मदुः खैः।।
बाला चाहं मनसिजभयात प्राप्तग

अर्थात् किसी नायिका के घर में एक पथिक सोया हुआ है। नायिका उससे कह रही है, हे पथिक निद्रा को छोड़ो क्योंकि यह रात है। बादलों के घिर जाने के कारण भयंकर अंधकार है, भाग्यदोष से दुःखी होकर मेरे पति सो गये है, में बाला हूँ, कामदेव के भय से मेरा ॉरीर काँप रहा है, और इस गाँव में चोरों का उपद्रव भी है। यही वर्णन विद्यापति के पद में नवीनता लिए दर्शनीय है।

"हम जुबति पति गेलाह विदेस
लग नहि बसए पलउसिहु ले"ा।।
सासु ननद किछुओ नहि जान।
आँखि रतौंधी सुनए न कान।।
जागह पथिक जाह जनु भोर।
राति अन्हार गाम बड़ चोर।।
सपनेहुँ भाँरि न देअ कोटवार।
पओलहु लोते न करए विचार।।
नृप इथि काहु करए नहि साति।
पुरूष महते रह सरब जाति।।
भनइ विद्यापतित्यादि।"

अर्थात् मैं युवती, पति विदेश चले गये है, पास में पड़ोस में लेशमात्र कोई भी नहीं है, घर में केवल सास है, जो कुछ नहीं समझती है, उसे रतौंधी है तथा कान से बहरी है, हे पथिक जागो सवेरे मत जाओ, क्योकि रात अँधेरी है और यह गाँव बड़ा चोर है।

कोतवाल भूलकर भी पहरा नहीं देता, यहाँ कोई किसी का ध्यान नहीं रखता है, राजा अपराधियों को दण्ड नहीं देता। इस गाँव के सब महान पुरुष हमारी ही जाति के है। श्रृंगारतिलक में कवि नायिका को पति पास ही सोया हुआ बताया है, जिससे जाग जाने की आशंका से रस की क्षति होती है। विद्यापति ने इस कमी को परखा और अपने पद में इसे दूर किया, उन्होंने पति को विदेस भेजा, सास को भी अँधी बहरी, मूर्ख बता कर दूर कर दिया तथा कोतवाल के पहरे का डर भी नहीं रहने दिया, यही नहीं राजा का डर तथा विरादरी का भय भी नहीं छोड़ा। इस प्रकार विद्यापति के पद में एक निःशंक वातावरण की सृष्टि की है, यदि "श्रृंगारतिलक" का वर्णन रसाभास के योग्य है, तो विद्यापति का वर्णन पूर्ण रसानुभूति का चरमोत्कर्ष हैं, सम्पूर्ण पद में विद्यापति का निरीक्षण अधिक व्यापक है।

इसी प्रकार सस्कृत के महाकवि माधव के सद्यःस्नाता नायिका का वर्णन विद्यापति ने समान रूप से ग्रहण ना करके अपनी वाकचारूता का प्रयोग किया है, सद्यःस्नाता नायिका का कवि 'माधव' द्वारा वर्णन–

"वासांसि न्यवसत यानि योषिस्ताः
शॅुभ्राभ्रद्युतिमिस्हासि तैर्मुदव।
अल्पाक्षुः स्नषनलज्जानि यानि
स्थूलाश्रु स्रुतिभिररोदि तैः शॅुचेत।।

इस वर्णन में कवि माधव की स्त्रियों ने नये सफेद वस्त्र धारण किये है, वह वस्त्र खुशी से हँसने लगे (अर्थात् वस्त्र की धवलता ही उनकी हँसी है) और जिन वस्त्रों का परित्याग किया वह शोक से व्याकुल हो आँसू बहाने लगे, (भीगे वस्त्रों से जल का गिरना ही उनका आँसू बहाना है। कुछ इसी प्रकार के भाव विद्यापति की इन पंक्तियों में दृष्टव्य है–

"ओनुकि करत चाहि किथ देहा।
अबिह छोड़ब मोहि तेजब नेहा।।
ऐसन रस नहि पाओब आरा।
इथे लागि रोइ गये जलधारा।।

इस वर्णन में नहाने से भींग जाने के कारण वस्त्र देह से चिपक जाते है, और उनके छोरों से पानी निकलता है। इन्हीं दो बातों को लेकर विद्यापति ने यह उत्प्रेक्षा की है, कि वस्त्र अपने को

छिपाना चाहता है। वस्त्र का देह से चिपकना ही उसके छिपाने का प्रयास है।इसलिए कि उसे आशंका हो गयी है, कि नायिका उससे प्रेम करना अर्थात उसे धारण करना छोड़ देगी यह सोचकर वस्त्र रो रहा है। (वस्त्र से जल गिरना ही उसका रोना है) माधव और विद्यापति के वर्णनों में एक ही दश्य को एक ही उपमा से वर्णित किया गया है, किन्तु कवि माधव अपनी भाषा से काव्य में वस्त्रों के आँसू दिखाकर ही मौन हो जाते है, किन्तु विद्यापति भाषा की मधुरता में रसभर कर उसका कारण भी उजागर करते है। कारण का वर्णन करने से ध्वन्यार्थ को किसी प्रकार की ठेस नहीं पहुँचती, वरन् नायिका का रुप सौन्दर्य और भी निखर गया है। यदि यह कहा जाय, कि इन वर्णनों में विद्यापति का वर्णन अपेक्षाकृत अधिक सरस और प्रभावपूर्ण है तो अति उक्ति न होगी।

संस्कृत के जिस कवि से विद्यापति की काव्य–भाषा से सबसे ज्यादा ग्रहण किया, वह है जयदेव, कवि जयदेव के काव्य के अधिकांा गुण विद्यापति के काव्य में मिलने के कारण ही "अभिनव जयदेव" की उपाधि से विभूषित किया गया। किन्तु कहीं–कहीं कवि विद्यापति अपनी भाषा में जयदेव को भी पीछे छोड़ गए है। जयदेव के विरह पीड़ा से व्याकुल नायक की कामदेव के प्रति यह उक्ति है–

"ह्रदि विलसता हारो नामं भुजंगमनायकः
कुबलयदल श्रेणी कण्ठे न सा गरलद्युतिः।
मलयजरजो नेदं भस्म प्रियारहिते मयि,
प्रहर ने हरभ्रान्तयाऽनंग क्रुद्धा किमु धावसि।"

अर्थात् हे कामदेव! यह सर्पराज नहीं है, अपितु विरह वेदना से व्याकुल ह्रदय को शीतल करने के लिए कमलनाल है। यह विष नहीं है। गले में नीले कमल का हार है, यह भस्म नहीं है, चन्दन की रज है इसलिए भूल से मुझे शिवजी समझ कर बाण मत चलाओ ओर क्रोधाभिभूत होकर मेरी ओर मत दौड़ो। इस वर्णन को विद्यापति ने अपने ॉब्दों में इस प्रकार अंकित किया है–

"कत न बेदन मोहि देसि मदनोसि मदना
हर नाहि मोंहि जुबति–जना।
विभूत–भूषन नहि चाननक नेरु
बघछाल नहिं नेतक बसनू।
नहि मोर जटाभार चिरकुरक बेनी
सुरसरि नहि मोरा कुसुमक सेनी।
नहि मोरा कालकूट मृगमद चारु
फनपति नहि मोरा मुक्ता हारु।
भनइ विद्यापति सुन देव कामा।
एक पय दूखन नाम मोर बामा।।[1]

इस पद में विद्यापति के शब्दों का प्रयोग अधिक सार्थक और चमत्कारिक है। कामदेव के लिए जयदेव ने 'अनङ्.ग' शब्द का प्रयोग किया है और विद्यापति ने "मदन" का, ''अनङ्..ग'' में शिव के प्रति कामदेव की शत्रुता निहित है। 'मदन' का अर्थ है, प्रसन्न करने वाला, किन्तु अपने नाम के विपरीत वह दे रहा है "दुख"। विद्यापति की नायिका अपने में दुःख देने वाला एक ही "पय" अर्थात अवगुण देखती है आरै वह है नाम की समानता "वामा", विद्यापति के इस प्रयोग में यही सार्थकता है, जयदेव ने विरह पिड़ित नायक को खड़ा किया है और विद्यापति ने कामबाण से व्याकुल युवती के द्वारा नाम सादृ'य के कारण प्रहार करने वाले काम की अविवेकता प्रकट कर अपनी रसिकता का परिचय दिया हैं यहाँ पर विद्यापति ने जयदेव के भावों को ग्रहण करके अपने काव्य को अपनी प्रतिभा और कवित्त शक्ति के निकर्ष (कस कर)पर और अधिक ह्रदयग्राही व चमत्कारिक बना दिया है।

निष्कर्ष

निष्कर्षतः कहा जा सकता है, कि विद्यापति अपने पूर्ववर्ती संस्कृत कवियों से अत्यन्त प्रभावित रहे। इन्होंने उन कवियों की भावनाओं को अवश्य ग्रहण किया, किन्तु अपनी काव्य–भाषा को अपनी प्रतिभा और मौलिकता के तटों में बाँध कर उन्हें एक नवीन प्रवाह की ओर प्रशस्त किया है, अन्य कवियों के भावों की आधार–शिलाओं पर अपने काव्य के भव्य प्रसादों का निर्माण करना महान और निष्णात कवियों से ही सम्भाव्य है, विद्यापति की महानता का रहस्य इस सम्भाव्यता में निहित है।

सन्दर्भ

1. डॉ नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ72
2. नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ72
3. इग्नू ीक–1 इकाई ३ का ३.२ विद्यापति का युग
4. शिवदान सिंह चौहान हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष पृ67
5. डॉ बच्चन सिंह, आधुनिक हिन्दी साहित्य, पृ76
6. डॉ हरीश चन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्य का आदिकाल, पृ42
7. डॉ भोला नाथ तिवारी, हिन्दी साहित्य, पृ36
8. डॉ नगेन्द्र हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ112
9. डॉ गणपति चन्द्र गुप्त, हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, पृ80
10. डॉ राम खिलावन पाण्डे, हिन्दी साहित्य का नया इतिहास, पृ34
11. अपभ्रंश भाषा का व्याकरण और साहित्यः रामगोपाल शर्मा 'दिनेश',
12. राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2002
13. अपभ्रंश काव्य परंपरा और विद्यापतिः अंबादत्त पंत, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, 1995
14. आदिकालीन भारत की व्याख्याः रोमिल थापर अनु॰ मंगलनाथ सिंह, ग्रंथ शिल्पी, नई दिल्ली, प्रथम हिंदी संस्करण, 1999
15. आरंभिक भारत का संक्षिप्त इतिहास और आदि मध्यकालः प्रो॰ द्विजेन्द्र नारायण झा, प्रकाशन संस्करण, दिल्ली, 1998
16. कीर्त्तिलताः बाबूराम सक्सेना, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, पंचम संस्करण, संवत् 2032
17. कीर्त्तिलता और अवहट्ठ भाषा : शिवप्रसाद सिंह, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 1999

Creative Commons (CC) License
This article is an open access article distributed under the terms and conditions of the Creative Commons Attribution (CC BY 4.0) license. This license permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original author and source are credited.